UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180907
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·6/S53Di Accession No. G.H 2213

Author शास्त्री, त्रिलोचन।

Title दिगंत। 1957

This book should be returned on or before the date last m   d below.

दिगन्त

त्रिलोचन शास्त्री

जगत शङ्खधर–पो० बा० २२–वाराणसी–१

प्रकाशक
जगत शङ्खधर—पो० बा० २९
वाराणसी—१

कापी राइट
त्रिलोचन शास्त्री

प्रथमावृत्ति जनवरी १९५७

मुद्रक
खण्डेलवाल प्रेस, भेलूपुर
वाराणसी

सूची

	पृष्ठ
सॉनेट का पथ	७
प्यार	९
दुनिया का सपना	१०
इतना तो बल दो	११
प्राणों का गान	१२
गाओ	१३
तुम्हें चाहता हूँ	१४
पश्यन्ती	१५
जिन्दगी के बच्चे	१६
स्पष्टीकरण	१७
सिपाही और तमाशबीन	१८
रोटी	१९
काँटे और याद	२०
वह अँजोरिया रात	२१
ध्वनि-ग्राहक	२२
कस्मै देवाय	२३
भिखरिया	२४
शतदरिया	२५
छुट्टा-बँधुआ	२६
खीझ	२७
भादों की रात	२८
भौजी	२९
दुःख और गान	३०
रेलगाड़ी में	३१
शारदा और निर्झर	३२
मूर्तिपूजा	३३
विदा के समय	३४

विचार	...	...	३५
दिनों की फेरी	...	...	३६
अट्टहास कर	...	...	३७
नया वर्ष	...	...	३८
काकली	...	...	३९
लबे सड़क	...	...	४०
जगदीशजी का कुत्ता	...	...	४१
रात में	...	...	४२
चिन्ता—हास्य	...	...	४३
बटोही और बाट	...	...	४४
लाश	...	...	४५
आया है वह	...		४६
मेंहदी और चाँदनी	...	...	४७
अपघात	...	...	४८
बाढ़ में दशाश्वमेध घाट	...	...	४९
तेनज़िङ् और हिलारी के प्रति	...	...	५०
पौराणिक प्रसङ्ग	...	...	५१
काशी का जुलहा	...	...	५२
चित्र	...	...	५३
मुक्ति राग	...	...	५४
मैं सौन्दर्य उपासक हूँ	...	...	५५
तुलसी बाबा	...	...	५६
निवेदन	...	...	५७
ग़ालिब	...	...	५८
जीवन-सागर	...	...	५९
माओ-त्से-तुग	...	...	६०
मुक्ति का गायक	...	...	६१
तीन इन्द्रधनुष	...	...	६२
भाषा की लहरें	..	...	६३
अपराजेय	...	...	६४

कवि शमशेर को

सॉनेट का पथ

इधर त्रिलोचन सॉनेट के ही पथ पर दौड़ा
सॉनेट सॉनेट सॉनेट सॉनेट क्या कर डाला
यह उसने भी अजब तमाशा. मन की माला
गले डाल ली. इस सॉनेट का रस्ता चौड़ा

अधिक नहीं है. कसे कसाये भाव अनूठे
ऐसे आयें जैसे क़िला आगरा में जो
नग है, दिखलाता है पूरे ताजमहल को.
गेय रहे, एकान्विति हो. उसने तो झूठे

ठाट-बाट बाँधे हैं. चीज़ किराये की है.
स्पेंसर, सिडनी, शेक्सपियर, मिल्टन की वाणी
वर्ड्सवर्थ, कीट्स की अनवरत प्रिय कल्याणी
स्वर-धारा है. उसने नई चीज़ क्या दी है !

सॉनेट में मज़ाक़ भी उसने खूब किया है,
जहाँ तहाँ कुछ रंग व्यंग का छिड़क दिया है.

अक्तूबर '५१

प्यार

जब भौंरे ने आकर पहले पहले गाया,
कली मौन थी. नहीं जानती थी वह भाषा
इस दुनिया की, कैसी होती है अभिलाषा
इससे भी अनजान पड़ी थी. तो भी आया

जीवन का वह अतिथि, ज्ञान का सहज सलोना
शिशु जिसको दुनिया में प्यार कहा जाता है,
स्वाभिमान - मानवता का पाया जाता है
जिससे नाता. उसमें कुछ ऐसा है टोना

जिससे यह सारी दुनिया फिर राई-रत्ती
और दिखाई देने लगती है. क्या जाने
कौन राग छाती में लगता है अकुलाने
इन्द्रधनुष-सी लहराती है पत्ती पत्ती.

बिना बुलाये जो आता है प्यार वही है.
प्राणों की धारा उसमें चुपचाप वही है.

फ़रवरी '५०

दुनिया का सपना

तुम जो मुझसे दूर कहीं हो सोच रहा हूँ
(और सोचना ही यह जीवन है इस पल का)
अब जो कुछ है वह कल के प्याले से छलका,
गतप्राय है. किसी लहर में सोन बहा हूँ,

अपना बस क्या. जीवन है दुनिया का सपना,
जब तक आँखों में है तब तक ज्योति बना है,
अलग हुआ तो आँसू है या तिमिर घना है.
बने ठीकरा तो भी मिट्टी को है तपना.

कल छू दी जो धूल आज वह फूल बन गई,
चमत्कार जिन हाथों में चुपचाप बसा है
ऐसा हो ही जाता है. यह सत्य कसा है
सोना, जिसपर जमे मैल की पर्त खो गई.

पथ का वह रजकण हूँ जिसपर छाप पगों की
यहाँ वहाँ है, मूक कहानी सहज डगों की.

फरवरी '५०

इतना तो बल दो

यदि मैं तुम्हें बुलाऊँ तो तुम भले न आओ
मेरे पास, परन्तु मुझे इतना तो बल दो
समझ सकूँ यह, कहीं अकेले दो ही पल को
मुझको जब-तब लख लेती हो. नीरव गाओ

प्राणों के वे गीत जिन्हें मैं दुहराता हूँ
सन्ध्या के गम्भीर क्षणों में शुक्र अकेला
बुझती लाली पर हँसता है. निशि का मेला
इसकी किरणों में छाया-कम्पित पाता हूँ.

एकाकीपन हो तो जैसा इस तारे का
पाया जाता है वैसा हो. वाम अनोखी
किसी फूल से उठती है, मादकता चोखी
भर जाती है, नीरव डण्ठल बेचारे का

पता किसे है, नामहीन किस जगह पड़ा है ?
आया फूल, गया, पौधा निर्वाक् खड़ा है.

फरवरी '५०

प्राणों का गान

दर्शन हुए, पुनः दर्शन, फिर मिलकर बोले,
खोला मन का मौन, गान प्राणों का गाया,
एक दूसरे की स्वतन्त्र लहरों को पाया
अपनी अपनी सत्ता में. जैसे पर तोले

दो कपोत दाँयें-बाँये-स्थित उड़ते उड़ते
चले जा रहे दूर क्षितिज के पार हवा पर
उसी तरह हम प्राणों के प्रवाह पर स्वर भर
लिख देते अपनी कांक्षाएँ मुड़ते मुड़ते

पथ के मोड़ों पर, सन्तुलित पदों से चलते
और प्राणियों के प्रवेग की मौन परीक्षा
करते करते लब्ध योग की सहज समीक्षा
शक्ति बढ़ा देती है, नये स्वप्न हैं पलते.

विपुला पृथ्वी और सौर-मण्डल यह सारा
आप्लावित है; दो लहरों की जीवन-धारा.

फ़रवरी '५०

गाओ

मेरे उर के तार बजाकर जब जी चाहा
तुमने गाया गीत. मौन मैं सुननेवाला
कृपापात्र हूँ सदा तुम्हारा, चुननेवाला
स्वर-सुमनों का. भीड़ भरा है जो चौराहा

दुनिया का उसमें केवल अस्फुट कोलाहल
सुन पड़ता है. किसको है अवकाश तुम्हारा
गान सुने, बदले अपने जीवन की धारा
अमृत-स्रोत की ओर. आह, भीषण हालाहल

समा गया है साँस साँस में घृणा-द्वेष का.
देख रहा हूँ व्यक्ति-समाज-राष्ट्र की घातें
एक दूसरे पर कठोरतर, थोथी बातें
सन्धि-शान्ति की. विजयी है दल दम्भ-क्लेष का.

गाओ, हाँ, उर के तारों पर जी भर गाओ
जहाँ मरण का सन्नाटा है जीवन लाओ.

फ़रवरी '५०

तुम्हें चाहता हूँ

ऐसा मत समझो तुमको मैं नहीं चाहता.
तुम्हें चाहता हूँ अपने प्राणों से बढ़कर
यह अत्युक्ति नहीं है. लेकिन मैं कराहता
कभी नहीं, नित रङ्गमञ्च पर ऊँचे चढ़कर

विरही लोगों के, वियोग की कविता पढ़कर
आँसू नहीं डालता जिससे नदियाँ, नाले,
पोखर, सागर भर जायें. निरुपमता मढ़कर
कभी तुम्हारी मनोमूर्ति रच देनेवाले

अपने क्षण भी याद नहीं हैं. पहलेवाले
प्रेमी अभिनय-कुशल अवश्य हुआ करते थे,
कवियों की रचनाओं में सैकड़ों हवाले
तुम्हें मिले होंगे; वे सब जीते मरते थे

स्वेच्छापूर्वक. उन लोगों का निपट निराला
कौशल मेरे पास कहाँ ? हूँ ममतावाला.

अप्रैल '५०

करता हूँ आक्रमण धर्म के दृढ़ दुर्गों पर,
कवि हूँ, नया मनुष्य मुझे यदि अपनायेगा
उन गानों में अपने विजय-गान पायेगा
जिनको मैंने गाया है. वैसे मुर्गों पर

निर्भर नहीं सवेरा होना, लेकिन इतना
झूठ नहीं है, जहाँ कहीं वह बड़े सबेरे
ऊँचे स्वर से बोला करता है, मुँह फेरे
कोई पड़ा नहीं रह सकता, फिर भी कितना

उसमें बल है. केवल निर्मल स्वर की धारा
उसकी अपनी है, जिसकी अजस्र कल कल में
स्वप्न डूब जाते हैं जीवन के लघु पल में—
तम से लड़ना है इस पश्यन्ती के द्वारा.

धर्म-विनिर्मित अन्धकार से लड़ते लड़ते
आगामी मनुष्य, तुम तक मेरे स्वर बढ़ते.

अप्रैल '५१

बिल्ली के बच्चे

मेरे मन का सूनापन कुछ हर लेते हैं
ये बिल्ली के बच्चे, इनका हूँ आभारी.
मेरा कमरा लगा सुरक्षित, थी लाचारी,
इनकी माँ ले आई. सब अपना देते हैं

प्यार हृदय का, वह मैं इनपर वार रहा हूँ.
मन की अप्रिय निर्जनता-शून्यता झाड़कर
दुलराता हूँ इन्हें. हृदय का स्नेह गाड़कर
नहीं रखा जाता है. भार उतार रहा हूँ

मन का. स्नेह लुटाने से दूना बढ़ता है.
यह हिसाब की बात नहीं है, इस जीवन का
मूक सत्य है. इसीलिए जो भी कञ्चन का
करते हैं सम्मान उन्हीं के सिर चढ़ता है

मिट्टी का अपमान. कहाँ कब छूटा पीछा
प्यार करो तो प्यार करो क्या आगा-पीछा.

मई '५१

मित्रो, मैंने साथ तुम्हारा जब छोड़ा था
तब मैं हारा-थका नहीं था, लेकिन मेरा
तन भूखा था मन भूखा था. तुमने टेरा,
उत्तर मैंने दिया नहीं तुमको. घोड़ा था

तेज़ तुम्हारा, तुम्हें ले उड़ा. मैं पैदल था,
विश्वासी था 'सौरज धीरज तेहि रथ चाका'
जिससे विजयश्री मिलती है और पताका
ऊँचे फहराती है. मुझमें जितना बल था

अपनी राह चला आँखों में रहे निराला,
भावदण्ड मानव के तन के मन के, तो भी
पीस परिस्थितियों ने डाला. सोचा, जो भी
हो, आँखों की करुणा का यह शीतल पाला

मन को हरा नहीं करता है. पहले खाना
मिला करे तो कठिन नहीं है बात बनाना.

अगस्त '५१

सिपाही और तमाशबीन

घायल होकर गिरा सिपाही और कराहा.
एक तमाशबीन दौड़ा आया. फिर बोला,
"योद्धा होकर तुम कराहते हो, यह चोला
एक सिपाही का है जिसको सभी सराहा

करते हैं, जिसकी अभिलाषा करते हैं, जो
दुर्लभ है, तुम आज निराशावादी-जैसा
निन्द्य आचरण करते हो." कहना सुन ऐसा
उधर सिपाही ने देखा जिस ओर खड़ा हो

उपदेशक बोला था. उन ओठों को चाटा
सूख गये थे जो, स्वर निकला "प्यास !" खड़ा ही
सुननेवाला रहा. सिपाही पड़ा पड़ा ही
करवट हुआ, रक्त अपना पी कुछ दुख काटा—

"जाओ चले मूर्ख, दुनिया में बहुत पड़े हैं.
उन्हें सिखाओ हम तो अपनी जगह अड़े हैं."

सितम्बर '५

रोटी

एक हजार आठ स्वामी...जी ने डकार ली,
हाथ पेट पर फेरा. बोले, "अधिक खा गया.
मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु का ध्यान आ गया,
भूल गया मैं. उन लोगों ने तो उतार ली

मर्यादा इस पुण्य-भूमि की, जिन लोगों ने
कहा कि रोटी ही सब कुछ है. यदि यह रोटी
सब कुछ होती, मुनि त्रिकालदर्शी यह छोटी
बात कहीं कह जाते ! आज नये ढोंगों ने

सबको बहकाया है. श्रद्धा रही अब कहाँ ?..."
प्रणत हो गया भक्त, कहा, "स्वामीजी, भोजन
रुचि का हुआ न होगा. हम वैसा आयोजन
कहाँ कर सके." "अजी माल था. तुष्ट हूँ यहाँ."

हँसी-हिलोरों से फिर तो वह काया मोटी
हिलने लगी तोंद में सिहरी सञ्चित रोटी.

सितम्बर '५१

काँटे और याद

काँटे गड़कर पैर पकड़ लेते हैं जैसे
वैसे ही यह याद तुम्हारी मेरे मन को
पकड़ लिया करती है. तब घर और विजन को
भूल भाल जाता हूँ और न जाने कैसे

आँखों में वह पंथ पहाड़ी आ जाता है.
वह दूधिया उजाला, टेढ़ा चाँद, धुँधलके
शेष बिम्ब पर चमकीला तारा यों झलके
जैसे माथे पर बिन्दी. जब गा जाता है

कोई कलासिद्ध गायक, तब गूँज निरन्तर
स्मृति की लहरों से प्राणों के उन पर्दों पर
उठती है जिनमें स्वर सञ्चित हैं. दर्दों पर
लहर होश की आती है. मिटता है अन्तर.

मन में याद गड़े चाहे पैरों में काँटा,
सुख-दुख दो पलड़ों पर नहीं गया है बाँटा.

अक्टूबर '५१

वह अँजोरिया रात

तुम्हें याद है रात अँजोरिया ? हम तुम दोनों
नहीं सो सके, रहे घूमते नदी किनारे
मुग्ध देखते प्यारभरी आँखों से प्यारे
भूमि-गगन के रूप-रंग को. यों तो टोनों

पर विश्वास नहीं मेरा, पर टोने ही सा
कुछ प्रभाव हम दोनों पर था. कभी ताकते
भरा चाँद, फिर लहरों को, फिर कभी नापते
अन्तर का आनन्द डगों से, जो यात्री-सा

दोनों का अभिन्न सहचर था. इधर-उधर के
खड़े अचंचल पेड़ क्षितिज पर, ऊपर तारे,
चाँद पिघलता लहरों में, रेती—ये सारे
दृश्य आज आँखों में आये, आकर सरके.

वही नदी है, वही रात है, किन्तु अकेला
अब मैं ही हूँ. पहले की सुधियों से खेला.

अक्टूबर '५१

ध्वनिग्राहक

ध्वनिग्राहक हूँ मैं. समाज मे उठनेवाली
ध्वनियाँ पकड़ लिया करता हूँ. इसपर कोई
अगर चिढ़े तो उसकी बुद्धि कहीं है खोई
कहना यही पड़ेगा. अगर न हो हरियाली

कहाँ दिखा सकता हूं ? फिर आँखों पर मेरी
चश्मा हरा नही है. यह नवीन ऐयारी
मुझे पसन्द नही है. जो इसकी तैयारी
करते हों वे करें. अगर कोठरी अंधेरी

है तो उसे अँधेरी समझाने-कहने का
मुझको है अधिकार. सिफारिश से, सेवा से
गला सत्य का कभी न घोटूंगा. मैवा से
वरंब्रूहि न कहूँगा और न चुप रहने का.

लड़ता हुआ समाज, नई आशा-अभिलाषा,
नये चित्र के साथ नई देता हूँ भाषा.

मार्च '५१

कस्मै देवाय

मैंने उनके लिए लिखा है जिन्हें जानता
हूँ जीवन के लिए लगाकर अपनी बाज़ी
जूझ रहे हैं, जो फेंके टुकड़ों पर राज़ी
कभी नहीं हो सकते हैं. मैं उन्हें मानता

हूँ आगामी मनुष्यताओं का निर्माता.
कभी आत्मरक्षा से ही वह ज्योति जगी है
जिसमें असत्-अँधेरे की सब शक्ति लगी है
थर थर थर काँपने. नये युग के उद्गाता

वे हैं जो हैं निपट निरक्षर लेकिन जिनकी
प्राणों की ललकार जानती कभी न रुकना,
जिनका आहत मान जानता नेक न झुकना.
स्पष्ट रूपरेखा है उनकी अपने दिन की.

क्रांति उन्हीं लोगों के पास पला करती है,
दुख के तम में जीवन-ज्योति जला करती है.

मई '५१

भिखरिया

अभी भिखरिया होगा बस बारह-तेरह का.
समझ बूझ मे कोई देखे बड़ा धनी है
गुण ही गुण दिखते हैं ऐसी सहज बनी है,
बाल चेतना उसकी. फूल अनोखा महका

मानो अपनी टहनी पर, सब आसपास की
हरता हुआ अकिंचनता. यह तो किसान के
घर का एक दिया है जिसको इस जहान के
किसी एक घर के कोने में कुछ उजास की

रेखाएँ अङ्कित कर बुझ जाना है. अब भी
नहीं समय आया है जब सब बढ़नेवाले
प्रोत्साहन पायें, समाज को गढ़नेवाले
स्वार्थों में डूबे हैं. देश जगेगा जब भी.

नई चेतनाओं के मुझको बाग अनोखे
सीधे लगे मर्म में आकर चोखे चोखे.

नवम्बर '५१

अतवरिया

चिल्ला जाड़ा था. चिड़ियाँ तक पंख समेटे
अभी घोंसलों में थीं, सूरज उग आया था.
दो दिन पहले ओले खूब पड़े थे. लेटे-
लेटे बाहर देख रहा था, दन्दाया था

मैं लिहाफ़ के अन्दर, बाहर गाढ़ा कुहरा
दौड़ रहा था, जब तब मुँह से भाप छोड़ता
देख रहा था उसकी लहरें. पर्दा दुहरा
था, कुछ पग के बाद दृष्टि का तीर तोड़ता

अपनी नोक लौट आता था. निकली नारी,
और पास आई, चीन्हा, अतवरिया थी, जो
मेले में हिरा गई थी. बोली, "लाचारी
मुझे फेर लाई, वह तजकर गया सरग को."

प्रेम जागता जीवन यों तो दे जाता है,
मगर पेट के आगे वही हार खाता है.

दिसम्बर '५१

छुट्टा-बँधुआ

छुट्टा साँड़ बर्द बँधुआ दोनों चैती के
कटने पर सीवान में मिले, हुई रमरमी.
कहा साँड़ ने, "कैसे हालचाल हैं जी के
इधर तुम्हारे ?" कहा बर्द ने, "नहीं है कमी

किसी चीज़ की, खाने-पीने का अच्छा सा
डौल हो गया है. ये दिन हैं सुस्ताने के.
कोई चिन्ता नहीं." साँड़ बोला, "तुम झाँसा
किसी और को देना. कभी नहीं आने के

हम इन दमपट्टी की बातों में. उसे छलो
जो जानता न हो कुछ. घट्ठा यह कन्धे का
सब कुछ कह देता है. गैल लगे चले चलो,
जितनी माटी चल पाओ, गुर है धन्धे का."

छुट्टा-बंधुआ दोनों जीवन में हारे हैं;
साक्षी दिन का रवि है तो निशि के तारे हैं.

दिसम्बर '५१

खीझ

डियर, चलो सिनमा हो आयें. तबियत भारी-
भारी सी है. लीला कहती थी, निशात में
आज 'अनोखी शादी' है, जुलूस तैयारी
से सजकर निकला था...तुम तो बात बात में

जेब दिखाने लगते हो. अच्छा हो काफ़े
ही हो आयें, मन कुछ बहले. इनकी उनकी
देखें सुनें...घड़ी क्या देखूँ ?...तुम्हें मुनाफ़े
में गोया मैं मिली हुई हूँ. ठुनका-ठुनकी

बिना कभी मेरी सुनते हो ?...किसको चूल्हा
दिखा रहे हो. धुँआ बराबर पीते पीते
तंग आ गई मैं. दुखता है मेरा कूल्हा,
बैठ नहीं पाती. ये दिन हैं कितने तीते !

यह भी क्या ज़िन्दगी, वही दिन, वही सबेरा,
वही रात, तेली के बैल-सरीखा फेरा.

दिसम्बर '५१

भादों की रात

भरी रात भादों की...पथ...लपका वह कौंधा
दीप्ति भर उठी आँखों में इतनी, फिर हम तुम
कुछ भी पकड़ सके न डीठ से, छाया चौंधा.
तड़ तड़ तड़त्तड़ाङ् धाङ् धा धाङ् धुङ् धू हुम्

धाराधर का गगन-गान सुनकर तुम बोले
"चलो कहीं रुक जायँ, रात भी अधिक हो गई,
दिन दिन चलना अच्छा होगा." पथ पर टोले
गाँव कहीं दीखते नहीं थे. "कहाँ खो गई

वह धृति जो तुमको उभारकर पथ पर लाई ?"
मैंने कहा. फिर चमक, कड़ कड़ कड़क कड़ग्घम्.
पकड़ तुम्हारे हाथों की कन्धे पर पाई,
बाग़ आ गया था, शरणास्थल मिला, गये थम.

रिमझिम रिमझिम—छक् छक् छक् छक्—सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक—धमाके घन के, उत्सव निशि भर.

दिसम्बर '५१

भौजी

भौजी नई नई आई थीं. मैं छोटा था.
झेंपू था. मिलने-जुलने में सिकुड़ा सिकुड़ा
रहता था. समान वयवालों से मोटा था
पर फुर्ती थी. पीछा करने पर उड़ा उड़ा

यहाँ वहाँ फिरता था. कभी पकड़ में आता
नहीं. खड़ा था, और अचानक मुझे आ-लिया,
हाथ-पाँव फेंके पर छूट कहाँ से पाता !
लगीं गुदगुदाने मन का संकोच धो दिया.

देकर दुलहिन नाम मिठाई मुँह में भर दी.
गाँव नहीं रह पाया, भागा ज्यों ही आया,
कई होलियाँ गईं. एक होली में कर दी
अपने मन की, रँग दी कनई से यह काया.

भौजी आज नहीं है, जाता हूँ, आता हूँ,
पीछा करते कहाँ किसी को अब पाता हूँ !

दिसम्बर '५१

दुःख और गान

जब जब दुख की रात घिरी तब तब मैं गाना
खुलकर गाता रहा; अँधेरे में स्वर मेरा
और उदात्त हो गया, सीखा नहीं छिपाना
मैंने मन के भाव, देखकर घोर अँधेरा

दीप स्वरों के पथ पर रखता मैं एकाकी
बढ़ता रहा, रुका कब ? इनकी उनकी आशा
मुझे नहीं थी, विषपायी था, कभी सुधा की
चाह नहीं की, न ही अमरता की परिभाषा

गढ़ने बैठा, डर क्या है, अब वह भी बीते
जो बाक़ी है, आघातों–प्रत्याघातों में
नया सत्य आयेगा, हार नहीं मैं जीते
जी मानूँगा, और लड़ूँगा उत्पातों में.

दुख के गाने कण्ठ कण्ठ के हैं पहचाने
सबके प्राण तड़पते हैं जान-अनजाने.

दिसम्बर '५१

रेलगाड़ी में

सफ़र रेलगाड़ी का—अपने आप झूलना
तन का, मन का. चेहरे चेहरे, आना-जाना,
कहना-सुनना, याद दिलाना और भूलना,
मिलकर खिल जाना, खिलकर तुरन्त मुरझाना,

अनचाही भीड़ों से भिड़ना और सूरतों
की रेखाओं को उड़ती निगाह से पढ़ना,
मन की कहाँ कहाँ की किन किन मौन मूरतों
की उनहार दिखाई दे सकती है, चढ़ना

चित पर नई खोज की धुन का, सहसा रुकना
डीह तुम्हारे मुखमंडल पर फिर भाषा की
नई लहर आँखों में पाना, उठकर झुकना
पलकों का, वह झलक पुतलियों में आशा की

आना नीरव नीरव इतना कुछ दे जाना
और कुछ नहीं, बस कृतज्ञता लेते जाना.

मार्च '५१

अन्धकार के सन्नाटे में मुझ डूबे को
बढ़ा सुरों के हाथ शारदा ने फिर खींचा.
मुरझाया था, अक्षय अमृत-स्रोत से सींचा.
नई लालसा नई चाह दी उस ऊबे को
जो संकुचित पड़ा था, जी के मंसूबे को
कब का सुला चुका था. सब कुछ ऊँचा-नीचा
देख चुका था, उसके मृदुल हृदय को भींचा
जब दुःखों ने. समझा, बहना है तूँबे को.

मुसकाकर घन अन्धकार में आभा ला दी
और कहा, "तू व्यर्थ मान ठाने सोया है
निर्झर ने गर्जनापूर्ण स्वर से दिखला दी
जीवन की अदम्यता, उसने कब खोया है
सत्वर वेग और बल अपना. राह बता दी
बाधाओं को, जीवन का कल्मष धोया है."

अप्रैल '३३

मूर्तिपूजा

वाराहावतार की प्रतिमा औड़िहार में
देखी, जलौघमग्ना सचराचरा धरा की
करुण मूर्ति मन में लहराई. विपद् वराकी
को क्या सहनी पड़ी ? उसी के समुद्धार में
लग्न देव-मुद्रा तक्षित थी. नराकार में
आगे-पीछे सुदृढ़ चरण, कर स्वयं त्वरा की
अभिव्यक्ति थे, स्फूर्तिमयी थी परम्परा की
यह छवि. सब कुछ का संमूर्तन था उभार में.

आये कुछ ग्रामीण, नत हुए और बजाया
भक्तिभाव से घण्टा. बात किसी ने पूछी,
"कौन देवता हैं ये ?" "बात कहूंगा आगे,"
कहकर वयोवृद्ध डगरा, उनको डगराया.
मैंने देखा प्रणति-भक्ति दोनों हैं छूछी.
इनमे भाव कहाँ जो मूर्तिकार में जागे ?

अप्रैल '५३

विदा के समय

आज सदा के लिए अलग होने से पहले
आओ पुनः गले मिल लें हम, फिर तुम जाओ
जहाँ कहीं जी चाहे, जिसमें जीवन पाओ
उसको अपनाओ, जैसे भी तबियत बहले
वैसा काम करो. कोई कुछ दिन को सह ले,
पर मन से सर्वदा उलझना...परे हटाओ.
जो कुछ कहा-सुना हो, स्मृति से उसे मिटाओ.
सभी छूटते हैं तो यह स्मृति भी क्यों रह ले.

यहाँ-वहाँ टहले थे, यहाँ-वहाँ बातें कीं,
यहाँ-वहाँ के दृश्य आज भी हरे भरे हैं,
यहाँ-वहाँ बैठे, विश्रम्भालाप हमारा
हुआ, बचाकर-बचकर कई मुलाकातें कीं.
आज ? आज वे सारी बातें बहुत परे हैं.
तीर नदी के गये, रह गया सिन्धु-किनारा.

सितम्बर १५३

विचार

क्यों मैंने पाया है इतना नरम कलेजा
जो दुख कभी किसी का नहीं देख सकता है ?
आँखें भर भर आती हैं, यह मन थकता है
नहीं उठा रखने में कुछ भी. ले जा ले जा
मेरा जो कुछ तुझे चाहिए, दे जा दे जा
मुझे अलाय. बलाय सभी तू. यह बकता है
यों ही सोच न ऐसा : अब किसको तकता है,
तेरे दुख ने तुझको ठीक पते पर भेजा.

सचमुच, सचमुच, मेरे पास नहीं है पैसा,
वह पैसा जिससे दुनिया-धन्धा होता है.
तो क्या, दिल तो है. ऐसा दिल जिसमें दिल का
ठीक ठीक प्रतिबिम्ब उतर आता है, जैसा
दर्पण में जखनव होता है. क्यों रोता है ?
पैसेवाला रह जाता है केवल छिलका.

सितम्बर '५३

दिनों की फेरी

अच्छाई इन दिनों बुराई के घर पानी
भरती है. क्या ठाट बुराई ने बाँधे हैं,
बड़े बड़े अड़ियल भी हार गये ; काँधे हैं
उसके जुए और चलते हैं. जो कुछ ठानी
वही कराया. कहीं किसी ने भौंहें तानी
उसको निबटाया, कड़वे व्यञ्जन राँधे हैं
इधर रसोई ने उसकी, बाहर धाँधे हैं
नये नये उद्योग. कहाँ है कोई मानी ?

अच्छाई के बिगड़े दिन हैं, और बुराई
राजपाट करती है. अब तो रानी चेरी,
चेरी रानी है. सच के आसन पर बैठा
झूठ पुजाता है. केवल हर ओर खुराई
दीख रही है. कभी दिनों की ऐसी फेरी
नहीं हुई थी. जन-मन में भय ही भय पैठा.

अक्तूबर '५१

अट्टहास कर

अट्टहास कर, अट्टहास कर, अट्टहास में
मन को गड़नेवाले दर्द डूब जाते हैं.
संज्ञाप्लावी क्षण जीवन में जब आते हैं
तब सब कुछ बह जाता है, केवल उजास में
दिखलाई देता है. भावी के विलास में
डूबे जन अपने आगम पर पछताते हैं,
गिरे गिरे रहते हैं, आँसू दिखलाते हैं.
उनके ढब मे नहीं, विश्व को पकड हास में.

आँसू ? आँसू से तो विश्व डूब सकता है.
तू अपने आँसू कम कर दे, यह भी तेरा
आत्मदान है और हास तो वरदानों मे
सर्वोत्तम वरदान रहा. जग कब थकता है
मधुर हास मे. दुःखों का दुरतिक्रम घेरा
अट्टहास ही तोड सका है अभियानों में.

मार्च '५४

नया वर्ष

नया वर्ष आया है, माथे पर होली की
भस्म लगाये, अङ्गों में बहार रङ्गों की
छाई है. अमराई में नूतन ढङ्गों की
सिन्दूरी, केसरिया मञ्जरियाँ टोली की
छटा बढ़ाती हैं, बहार पिक की बोली की
सभी कानवालों के पग में नव भङ्गों की
बेड़ी अलग डाल जाती है. इन संगों की
स्मृति उतनी सुखकर है जितनी हमजोली की.

फूले हैं पलाश, सेमल, गुलाब, बनबेला
जामुन नीम, सिसोढ़े. अभिनव दल आये हैं
पीपल-पाकड़ मे. मतवाली हैं मौनाएँ
फूल फूल का रस लेती हैं, यह मधुमेला
भला फिर कहाँ ? मानव ने जो दुख पाये हैं
वे जायें, जीवन में नई उमंगें आयें.

मार्च '५४

काकली

तड़के तड़के क्या जाने क्यों कोकिल बोला.
फिर बोला, फिर बोला, अन्धकार की कारा
रह रह कर थर्राई. स्वर की ज्योतिर्धारा
बार बार उमड़ी. कल कल की ध्वनि ने तोला
विकल और अवसन्न क्षणों को. धीरज डोला
दुख के दल का. इसमें क्या था जिसमें हारा
थका हृदय इतना इतना पा गया सहारा
अप्रियता को दुरा दिया सम्मुख प्रिय को ला.

मक्ति कहाँ है, मुक्ति कहाँ ? जीवन बन्दी है.
पङ्ख फड़फड़ाती है मन में मुक्ति बिचारी,
तन के बन्धन में जन-मन निरुपाय पड़ा है.
भँवरों में बहुजन है, कोई आनन्दी है.
"हो आनन्द न सब का तो मानवता हारी",
कोकिल का तम के गढ़ में सन्देश बड़ा है.

अप्रैल '५४

लंबे सड़क

आवाज़ें कानों में नित्य कलबलाती हैं,
लंबे सड़क घर है. वह आया गुज़रा सरगड़.
इक्के-ताँगे-बैलगाड़ियाँ अपनी खड़खड़
सुना गये हैं. देखो ट्रकें हरहराती हैं
सड़क दहल उठती है. बसें सरसराती हैं
प्यादों से कहती हैं, और बग़ल से...मत लड़
मुझसे. कहें कहाँ तक, हरदम हड़हड़ भड़भड़
अकसर रिक्शों की घंटियाँ टुनटुनाती हैं.

अभी जुलूस गया है, इनक़लाब के नारे
दीवारों को कँपा गये हैं, भूखे-दूखे
अभी गरजते हुए गये हैं. यह "हाय राजा
मिलके बिछुड़ गई अँखियाँ" अलापते हैं तारे
सिनमा के. जो कहते हैं सब सोते सूखे
वे सुन लें रिकार्ड कहता है, "आ जा आ जा."

अप्रैल '५४

जगदीशजी का कुत्ता

"मुझे आपके कुत्ते ने कल काट लिया था;
जगदीशजी, आपने भी क्या कुत्ता पाला !"
"साहब, कुत्ता ही है. ऐसा क्या कर डाला
जिससे आप खफ़ा हैं. परसों चाट लिया था
मिस डिगर का लिपस्टिक. क्या ही ठाट लिया था,
सब रौनक़ उड़ गई, पड़ गया मुँह पर ताला.
आँखें भर आईं, तुरन्त रूमाल निकाला.
लोगों ने गम्भीर मुखौटा डाट लिया था."

"कुछ भी आप कहें. ऐसे कुत्तों को गोली
मार दिया करते हैं." "साहब, क्षमा कीजिए.
मुझमें उसमें कोई मौलिक भेद नहीं है.
इसी बहाने जाँच आपकी पूरी हो ली.
अभी शिष्टतापूर्वक अपनी राह लीजिए.
अगर आपको इन शब्दों पर खेद नहीं है."

मई '५४

रात में

ढली रात, सुनसान गली है और अकेला
मैं चलता हूँ. नींद-भरा स्वर, पहरेवाला
कहता है, जागते रहो. पथ काला काला
तम में है. ऊँचे ऊँचे भवनों का मेला
दोनों ओर लगा है, मानो ठेलमठेला
की स्थिति है. बल्ब का क्षीण में क्षीण उजाला
जहाँ तहाँ पथ पर है. देव-देहली माला-
फूल अटी है, याचक का मन जिनमें खोता.

गाये बैठी हैं यह, कुत्ता गुड़ीमुड़ी है,
जाग न जाय, न काटे तो अवश्य भूँकेगा.
अपनी सनक दूसरे कुत्तों में फूँकेगा.
मन को मोड़ा, देखा सिर पर सभा जुड़ी है
तारों की, सन्नाटा है, अफवाह उड़ी है
क्या कोई ? क्या कोई अभी जान बूँकेगा ?

जुलाई '५४

मेरे आठ माह के शिशु को सुई चुभो दी
रक्त-परीक्षक ने मेरी आँखों के आगे.
देखा. देखा. जी काँपा. मन में स्वर जागे,
मंगल हो. मंगल हो. बीमारी ने वो दी
काँटों की वेदना. पल को मैंने धृति खो दी.
फिर मन को समझाया, नर होकर जो त्यागे
धैर्य, नर नहीं. धीरज से माँ सङ्कट भागे.
दृष्टि झुका ली माँ ने, आँसू-कनी न बो दी

घर पर आये, बैठे. लो चुन्नू मुसकाया,
चिन्ता के घन उड़े. चाँदनी बाहर आई,
नील निरभ्र व्योम में चन्द्र-छटा लहराई.
चुन्नू करवट हुआ, पेट के बल फिर आया.
किलकारी मारी, विहँसा, यों पास बुलाया,
सिर ऊँचा कर दृष्टि हमारी ओर उठाई.

अगस्त '५४

बटोही और बाट

उठा बटोही. कहा हवा ने, "चल, बढ़ता चल.
साथ साथ मैं भी हूँ. तब तक सूरज निकला,
उष्ण करों से स्पर्श किया, फिर बोला, "इकला
जैसा तू वैसा मैं. चुप मत रह, पढ़ता चल
नये मंत्र, मत हार, चढ़ाई है, चढ़ता चल."
धीरे धीरे सूरज अस्ताचल से ढिकला.
सन्ध्या. अन्धकार. चाँद का उजाला सिकला.
ज्योत्स्ना बोली, "छाप चरण की तू मढ़ता चल

पथ की धूलिराशि पर." क्यों तारे मुसकाये,
क्यों आँखें भर लाये, क्षण भर मे क्या देखा ?
जीवन की झोली रीती है, मन का लेखा
कब पूरा पड़ सका ? पाँव, पाया भर आये.
मथ डाला सागर केवल झिंगे उतराये.
हवा पुनः बोली, "चल, खिली सुनहली रेखा."

सितम्बर '५४

लाश

विन्ध्यपाद में देखा एक लाश को सड़ते.
था अनुकूल पवन, जा पहुँचा. सम्मुख देखा,
दहल गया. जीवन का ऐसा भी क्या लेखा ?
अब अन्दोर उठ रहा था. धीरज को अड़ते
नहीं पा रहा था. झोंके सडाँद के गड़ते
थे घ्राणेन्द्रिय में. कीड़ों की गति की रेखा
सूर्य-प्रभा से भासमान थी. मैंने पेखा
उत्तरचरित देह का. कुछ विमोह में पड़ते

फिर सोचा, इसका ऐसा क्यों अन्त हो गया ?
क्या इसका अपना कोई भी कहीं नहीं था ?
क्या इसकी अन्तिम शय्या का स्थान यहीं था ?
फिर दुर्गन्धि और मन का सन्तुलन खो गया.
आँखों पर बुद्बुद् फूटा, कनपटी धो गया.
तन था, मन था; पर मन, मन तो और कहीं था.

सितम्बर '५४

आया है वह

सीथ बीनकर खाता है अब वह बंगाली
जो दूकान चलाता था, तनकर चलता था,
स्निग्ध प्रार्थनाओं के स्वर सुनकर ढलता था
और कृपा करता था, लेकिन अब कंगाली
ने श्रीहीन कर दिया है. घर से गंगाली,
अर्तन-बर्तन, बिके. एक दल ही पलता था
उसके अन्न और जल पर, प्रतिदिन छलता था
अपनापे के अभिनय से. अब घर है खाली.

लाला ओमप्रकाश कर्ण-जैसे दानी हैं.
दान करेंगे तभी घूँट पानी का उनके
गले उतर सकता है. ब्रह्मा ने भी चुनके
उन्हें सम्पदा सौंपी है. कितने ज्ञानी हैं,
दोनों हाथ लुटाते है. मन के मानी हैं.
खिचड़ी बटवाते हैं, आया है वह सुनके.

सितम्बर '५४

मेंहदी और चाँदनी

मेंहदी की अरुचान उडी. देखा, फिर ठहरा.
कपिश गहगहे विमल फूल खिलखिला रहे हैं
अपने सौरभ के स्वर मिलकर मिला रहे हैं.
हवा चली, मानो वे बोले. निशिदिन पहरा
यहाँ हमारा रहता है. गहरे मे गहरा
भेद हमारे यहाँ खुलेगा. दिला रहे हैं
हम मेंहदी मे मर्म सत्य का पिला रहे है
अमृत घाम को. स्वार्थ यहा तक आते हहरा.

वर्षा-सीकर-भरी हवा, मेंहदी की मँह मह
जी करता है, मैं अञ्जलि भर भर पी जाऊँ.
जैसे फुलमुँघनी गाती त वैसे गाऊँ.
वृक्ष, लताएं, पोधे, तृण धरती पर टह टह
करप रहे है. मेघ-नगर मे ज्योत्स्ना टह टह
उग आई अब. आँखें सहम कहाँ मे लाऊँ !

सितम्बर '५४

"धरती फट जाती तुझको लेकर मिल जाती..."
माँ ने मूँद लिया मुँह, रोई, फिर कहा. "बता,
बता पेट किसका है ? अब तो और मत सता."
गाढ़ श्याम मेघों में पलभर को खिल जाती
हो जैसे बिजली, फिर कड़क, और हिल जाती
हो पृथ्वी, ऐसे बादल गरजे. कहा, "पता
देती है या तुझे काट डालूँ अभी, लता!"
दुख की घनी भीड़ के रेले में ठिल जाती

है एकाध हँसी, निरुपाय लता भी हँस ली.
हाथ बँधे थे, पाँव बँधे थे, नीरव आँखें
बँधी आँसुओं के बंधन से. मन की पाँखें
टूट चुकी थीं. धीरे धीरे गर्दन फँस ली
फाँसी में, रस्सी की, इस नागिन ने डँस ली
उसकी अन्तिम हँसी. आप हम किसपर माँखें ?

अक्तूबर '५४

बाढ़ में दशाश्वमेध घाट

दशाश्वमेध घाट पर गंगा की धारा है
तट पर जल के ऊपर ऊँचे भवन खड़े हैं
विपुल गुहा-कक्षी ज्यों क्षुद्र पहाड़ गड़े हैं.
बिजली जली ज्योति से भग्न तिमिर कारा है.
तोड़ मारते जल-प्रवाह का स्वर न्यारा है.
जल पर पीपल की शाखा के छत्र पड़े हैं
दल दल के तम से बिजली के स्रोत लड़े हैं
तमसाच्छन्न क्षितिज-तरुश्रेणी, नभ सारा है.

ररें बैठे, काली सड़क दाहिने बायें,
जल को छूने तल्ले, तल्लों पर सैलानी
जमे हुए हैं, कहीं चल रही कथा-कहानी,
नौजवान आते हैं, आती हैं महिलाएँ,
विस्फारित लोचन विलोकने वे उपदाएँ
जो गंगा ने दी हैं, जो हैं आनी-जानी.

अक्तूबर '५४

तेनज़िङ् और हिलारी के प्रति

ऊँचे से ऊँचे चढ़ जाने की अभिलाषा
पर्वत से पर्वत पर तुम्हें रही भटकाती,
टेढ़ी मेढ़ी राह नवीना सी मटकाती
तुमको आमंत्रित करती थी. मन की भाषा
शिला शिला में मूर्तिमान थी. पोषित आशा
तुम्हें 'सरग माथा' तक ले जाती, खटकाती
मन में नये नये खटके, दिन दिन अटकाती
रही पर्वतारोहण में. पदाङ्क परिभाषा

बने तुम्हारे जीवन की. मैं केवल बढ़ते
चरण देखता हूँ. शेरपा तेनज़िङ् उस दिन
साथ हिलारी के तुमने रक्खे पग गिन गिन
उस सर्वोच्च शिखर पर जिसके ऊपर चढ़ते
कितने गले-पचे मानवता की जय पढ़ते
तुम दोनों ध्वज-से पहुँचे चल चलकर पल-छिन.

अक्तूबर '५३

"वरम्ब्रूहि" कानों में अमृतमयी ध्वनि आई
आत्मा तक पहुँची, समाधि की जड़ता टूटी.
लोचन ताका किये, वकार तक नहीं फूटी.
परमात्मा प्रगटे थे. फाँस गले में पाई
बालक ध्रुव ने, जो भाषा बोली. जो गाई,
काम न आई, किधर सिधाई ? स्मृति से छूटी
कौन लुटेरा था जिसने यह निधि भी लूटी ?
प्रभु के अधरों पर प्रोत्साहन की स्मिति छाई.

लोचन ताका किये. हृदय का संचित पावन
जल ढल चला. पुतलियों में छवि सजल बस गई.
यह मूकता देखकर कर्ता ने लगा दिया
पाञ्चजन्य स्थिर अधरों से. वाणी से सावन
फूटा ऋतुओं सहित, भक्ति की गाँठ कस गई
भोग भोगकर, आत्मा व्यञ्जना को जगा दिया.

२ अक्तूबर '५४

काशी का जुलहा

ब्राह्मण को तुकारनेवाला वह काशी का
जुलहा जो अपने घर नित्य सूत तनता था
लोगों की नङ्गई ढाँकता था. आशी का
उन्मूलन करता था जिसका विष बनता था
जाति-वर्ण अहङ्कार. क़ब्रें खनता था
मुल्लों-मौलवियों की झूठी शान के लिए
रूढ़ि और भेड़ियाधसान को वह हनता था
शब्द-बाण से. जीता था बस ज्ञान के लिए
गिरे हुओं को खड़ा कर गया मान के लिए.
राम-नाम का सुआ शून्य के महल में रहा.
पन्थ पन्थ को देखा सम्यक् ध्यान के लिए
गुरु की महिमा गाई, वचन विचार कर कहा.

.ाईं की दी चादर ज्यों की त्यों धर दीनी
ड़ा-पिंगला-सुखमन के तारों की बीनी.

अक्तूबर '५४

चित्र

अपनी आँखों देखा, रवि ने जाते जाते
ली अबीर की मूठ, रसा की ओर चला दी.
लाली लिख-सी उठी. रात ने आते आते
धीरे धीरे सहम सहमकर छुआ—ढला दी
स्वर्ग-धूलि से परिधि लोह की और गला दी
धातु सघन सञ्चित आशा की. हारी हारी
आँखें तारों में जा अटकी. अमृत कला दी
वक्र चन्द्र ने. कुछ पहले का भारी भारी
मन हलका हो चला. चित्त की सारी सारी
व्यथा-कथा कुछ और रूप में आई, अब मे,
तब का सब, कुछ और हो गया. प्यारी प्यारी
छवि अम्बर में आँक उठी थी. न्यारी सब मे.

मैं जीवन का चित्रकार हूँ चित्र बनाता
घूम रहा हूँ, मन ही मन कल्याण मनाता.

अक्तूबर '५४

केवल भारत नहीं विश्व का मानव जागे
फूले, फले, बढ़े, अपने मन का सुख पाये,
निर्भय होकर मुक्त राग गाये, यों त्यागे
ईर्ष्या-द्वेष, नयन-पथ पर जितने सुख पाये
सब पर आत्मीयता लिखी हो. यदि दुख पाये
तो उससे मार्ग-च्युत न हो, न आपा छोड़े,
चाहे जैसे संकट अपने सम्मुख पाये.
हृदय एक शतदल है, सहसा उसे न तोड़े
जीवन की लहरों से; ममता रवि से जोड़े
वर्ग वर्ग जिसकी किरणों के चारु चरण हैं
स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-शब्द जगते हैं थोड़े.
बहुत स्वकीय गुणों से सब तन्मात्र-शरण हैं.

आपस का भय हटे. एक दूसरे में मिले,
घृणा दूर हो, हृदय हृदय के ताल पर खिले.

नवम्बर '५४

मैं सौन्दर्य का उपासक हूँ

मैं सौन्दर्य उपासक हूँ मेरे इस उर में
उसके रूप अनन्त अनन्त लिखन-भङ्गी से
अंकित हैं, स्तुति करता हूँ साँसों के सुर में
निशिदिन बिना विराम लिये दृग की लङ्गी से
गिर गिरकर फिर फिर उठता हूँ, बहुरङ्गी से
एक रङ्ग के बल कब कोई पार पा सका ?
अधिक नहीं तो भी मन का प्रबोध सङ्गी से
मिलता है मण्डल-गायक कौन गा सका
अपनी रुचि के गान, विजय के पास जा सका
इच्छा भर में, नहीं भूमि पर अब तक कोई
मुख आँसू में बचा, लक्ष्य जो पास ला सका
वही यहाँ जी गया, उसी ने गठरी ढोई.

जब देखा, आनन्द मिला, आँसुओं नहाया,
निष्कलंक, निर्बाध एकरस हास न पाया.

नवम्बर '५४

तुलसी बाबा

तुलसी बाबा, भाषा मैंने तुमसे सीखी
मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो.
कह सकते थे तुम सब कड़वी, मीठी, तीखी.
प्रखर काल की धारा पर तुम जमे हुए हो.
और वृक्ष गिर गये, मगर तुम थमे हुए हो.
कभी राम से अपना कुछ भी नहीं दुराया,
देखा, तुम उनके चरणों पर नमे हुए हो.
विश्व बदर था हाथ तुम्हारे उक्त फुराया.
तेज तुम्हारा था कि अमंगल-वृक्ष झुराया,
मंगल का तरु उगा; देखकर उसकी छाया
विघ्न-विपद् के घन सरके, मुँह कहीं चुराया.
आठों पहर राम के रहे, राम-गुन गाया.

यज्ञ रहा, तप रहा तुम्हारा जीवन भू पर.
भक्त हुए, उठ गये राम से भी, यों ऊपर.

नवम्बर '५४

निवेदन

तुम्हें देखता हूँ तो आँखों में सुरूप का
अञ्जन-सा लग जाता है. ऐसा लगता है
कि मैं तुम्हारे बिना निवासी अन्धकूप का
ही हूँ. मन में कुछ उत्साह नहीं जगता है
कि मैं कुछ चलूँ, करूं, धरूं; लेकिन डगता है
मेरा चिर वैराग्य तुम्हारे आ जाने से.
किसी अपार्थिव रस से मेरा मन पगता है
और सोचने लगता हूँ, तुमको पाने से
मैं कुछ से कुछ हो जाऊँगा, आ जाने से
सूरज के जैसे पृथ्वीतल हो जाता है
मन कुछ पाता है बीती पर पछताने से,
अकर्मण्यता का घनमण्डल खो जाता है.

सञ्चारिणी ज्योति, हर दो वह घोर अंधेरा
जिसने भूतल को, अम्बर को, आकर घेरा.

दिसम्बर '५४

ग़ालिब

ग़ालिब ग़ैर नहीं हैं, अपनों से अपने हैं.
ग़ालिब की बोली ही आज हमारी बोली
है. नवीन आँखों में जो नवीन सपने हैं
वे ग़ालिब के सपने हैं. ग़ालिब ने खोली
गाँठ जटिल जीवन की. बात और वह बोली
आप तुली थी; हलकेपन का नाम नहीं था.
सुख की आँखों ने दुख देखा और ठिठोली
की, यों जी बहलाया. बेशक दाम नहीं था
उनकी अंटी में. दुनिया से काम नहीं था
लेकिन उसको साँस साँस पर तोल रहे थे.
अपना कहने को क्या था ? धन-धाम नहीं था,
सत्य बोलता था जब जब मुँह खोल रहे थे.

ग़ालिब होकर रहे, जोतकर दुनिया छोड़ी,
कवि थे, अक्षर में अक्षर की महिमा जोड़ी.

दिसम्बर '५८

जीवन-सागर

मैं अपने एकाकीपन से ऊब गया था,
ऊब गया था, ऊब गया था. आखिर भागा,
अगले क्षण जीवन-सागर में डूब गया था;
क्या था जिसके लिए स्वयं को मैंने त्यागा ?
कौन सत्य था जो मन की लहरों में जागा ?
अहम्, तत्, इदम् अलग लगें लेकिन अलगाये
कभी नहीं जा सकते. इन सबका रस पागा
है ऐसा कि अनेक एक के तन में आये,
घुल मिलकर तल्लीन हुए, पल पल अपनाये
गये, और आँखों ने देखा जग का बाना
मन का एक सत्य है, श्वासों ने दुहराये
गान उसी के, अब हमको है उसको पाना.

सूरज एकाकी है लेकिन जब आता है
पृथ्वी का कण कण तब नया गान गाता है.

दिसम्बर '५४

जाग्रत् ज्वालामुखी हार का था जहाँ डटे
खड़े रहे तुम, खड़े रहे तुम, खड़े रहे तुम
झंझावातों के झोकों से उड़े, कुछ हटे,
पुनः लक्ष्य पर पहुँचे अच्युत, अड़े रहे तुम,
हानि, हानि पर हानि निरन्तर, कड़े रहे तुम,
जनता संकेतों पर सावधान चलती थी,
सङ्कट के पहाड़ के सम्मुख बड़े रहे तुमः
अन्तःकरण दीप्त था, दिव्य ज्योति जलती थी,
मुक्ति उसी की पावन लहरों में पलती थी
विकट दीर्घयात्रा, जीवन की दुर्दम धारा,
हिम की महिमराशि गिरिशिखरों पर गलती थी
सिंचकर रहा अन्ततः महादेश ही सारा

तुम थे माओ, जीवन के सौ अंकुर फूटे,
बन्धन टूटे, दलितों ने गौरव-धन लूटे.

दिसम्बर '५४

मुक्ति का गायक

अपनी मुक्ति-कामना लेकर लड़नेवाली
जनता के पैरों को आवाज़ों में मेरा
हृदय धड़कता है. पग में गड़ जानेवाली
नोकें काँटों की कोमल चमड़े का घेरा
मेरा फाड़ दिया करती हैं. जहाँ अँधेरा
सदियों का है वहाँ जो न घट जाय वही कम.
दारुण अत्याचार देखकर नया सबेरा
काँप काँप उठता है आँखों में. ये दुर्दम
नौजवान गरमाहट में भूले हैं, ये हम
सुस्ता ले फिर कोई पीड़ा जग जायेगी.
कितनों ने सङ्कट के पथ पर तोड़ दिये दम,
मातृ-भूमि केवल विभूति उनकी पायेगी.

किसी देश में मानवता को मुक्ति यदि मिली
तो मैंने जीवन पाया, जी की कली खिली.

जनवरी '५५

तीन इन्द्र धनुष

सान्ध्य-सूर्य ने तीन इन्द्र-धनुषों को आँका,
प्राची की सुस्निग्ध प्रगाढ़ श्याम घनमाला
आकर्षक अब और हो गई. तब तक झाँका
दिनकर ने घनपटल हटाकर, कर की माला
गले डाल दी वसुधा के. स्वर्णिम उजियाला
और दिप चला हरियाली पर. वर्षा का जल
अनुरञ्जित हो गया. धान बैठानेवाला
दल मजूरिनों का प्रसन्नता से कुछ चञ्चल
हुआ. झुकी कटि सीधी की. ओठों पर मङ्गल
ठहर गया. जाँघें छूती हाथों की आँटी
और सुहाई. पूँजे काँपे जल पर पल पल,
उधर बलाका ने अभिनव-श्री घन को बाँटी.

मोर रुका, बोला, बोला, वर्हों को ताना,
नाच चला, मोरनियों ने घेरा, सुख माना.

जनवरी '५५

भाषा की लहरें

भाषाओं के अगम समुद्रों का अवगाहन
मैंने किया. मुझे मानव-जीवन की माया
सदा मुग्ध करती है. अहोरात्र आवाहन
सुन सुनकर धाया-धूपा, मन में भर लाया
ध्यान एक से एक अनोखे. सब कुछ पाया
शब्दों में, देखा सब कुछ ध्वनि-रूप हो गया.
मेघों ने आकाश घेर कर जी भर गाया.
मुद्रा, चेष्टा, भाव, वेग, तत्काल खो गया,
जीवन की शय्या पर आकर मरण सो गया.
सब कुछ सब कुछ सब कुछ सब कुछ सब कुछ भाषा
भाषा की अंगुलि से मानव हृदय टो गया
कवि मानव का, जगा गया नूतन अभिलाषा

भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है,
ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल है.

जनवरी '५५

अपराजेय

हिन्दी की कविता, उनकी कविता है जिनकी
साँसों को आराम नहीं था, और जिन्होंने
सारा जीवन लगा दिया कल्मष को धोने
में समाज के, नहीं काम करने में घिन की

कभी किसी दिन. हिन्दी में सतरंगी आभा
विभव-भूति की नहीं मिलेगी; जन-जीवन के
चित्र मिलेंगे, घर के वन के सब के मन के
भाव मिलेंगे, बोये हुए खेत में डाभा

जैसे एक साथ आता है, कुछ ऐसे ही
वातावरण एक-से भावों मे छा जाता
है, फिर प्राणों प्राणों में एकत्व दिखाता.
नेह उमड़ आये तो दूर कहाँ है नेही ?

भाव उन्हीं का सबका है जो थे अभावमय,
पर अभाव से दबे नहीं जागे स्वभावमय.

अक्तूबर '५१

दिगन्त में कवि त्रिलोचन के कुछ सॉनेट संकलित हैं।

हिन्दी में सॉनेट तो प्रसाद पन्त निराला आदि अन्य कवियों ने भी लिखे हैं, लेकिन त्रिलोचन ने सॉनेट के रूप में विविध प्रकार के नये प्रयोग कर सॉनेट को हिन्दी कविता में मानो अपना लिया है। जीवन के अनेक प्रसंगों की मार्मिक और व्यंग्यपूर्ण अभिव्यंजना इन कविताओं में हुई है।

त्रिलोचन के सॉनेटों की भावभूमि छायावादी नहीं है, और न प्रयोगवादी ही, यद्यपि भाषा लय और विन्यास सर्वथा नवीन और चमत्कारपूर्ण हैं। जीवन के वैषम्यों की गहरी चेतना होने के कारण ही त्रिलोचन का दृष्टिकोण आशावादी है और उन्होंने अपनी अनुभूतियों को नयी भाषा में ढाल कर तीखी अभिव्यक्ति दी है जो सीधे हृदय पर चोट करती है।